सतनाम रामईया रामईया सतनाम

हरे रामा - हरे कृष्णा कृष्णा-कृष्णा हरे-हरे

"सचा तीरथ जित सत सर नावण - गुरमुख आप बुझाए । अठसठ तीरथ गुर सबद दिखाए - तित नातै मल जाए ।"

हरे कृष्णा - हरे रामा रामा-रामा हरे-हरे

" तीरथ नावा जे तिस भावा - विण भाणे कि नाइ करी । जेती सिरठ उपाई वेखा - विण करमा कि मिलै लई । "

" गुर समान तीरथ नही कोइ - सर संतोख तास गुर होइ । तीरथ हमरा हरि को नाम - गुर उपदेसिआ तत गिआन । "

Ⓐ **कोट** तीरथ मजन इसनाना - इस कल मह मैल भरीजै । साधसंग जो हरि गुण गावै - सो निरमल कर लीजै । करम धरम पाखंड जो दीसह - तिन जम जागाती लूटै । निरबाण कीरतन गावहु करते का - निमख सिमरत जित छूटै । संतह सागर पार उतरीऐ । जे को बचन कमावै संतन का - सो गुर परसादी तरीऐ । बेद कतेब सिम्रित सभ सासत - इन्ह पड़िआ मुकत न होई । एक अखर जो गुरमुख जापै - तिस की निरमल सोई । खत्री ब्राहमण सूद वैस - उपदेस चहु वरना कउ साझा । गुरमुख नाम जपै उधरै सो - कल मह घट-घट नानक माझा ।

Ⓑ **अंतर** मैल जे तीरथ नावै - तिस बैकुंठ न जाना । लोक पतीणे - कछू न होवै - नाही राम अयाना । पूजहु राम एक ही देवा । साचा नावण गुर की सेवा । जल कै मजन जे गत होवै - नित-नित मेंडुक नावह । जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर - फिर-फिर जोनी आवह । मनह कठोर मरै बानारस - नरक न बाचिआ जाई । हरि का संत मरै हाड़मबै - त सगली सैन तराई । दिनस न रैन - बेद नही सासत्र - तहा बसै निरंकारा । कह कबीर नर तिसह धिआवह - बावरिआ संसारा ।

Ⓒ **भरीऐ** हथ पैर तन देह । पाणी धोतै उतरस खेह । मूत पलीती कपड़ होइ । दे साबूण लईऐ ओह धोइ । भरीऐ मत पापा कै संग । ओह धोपै नावै कै रंग । पुंनी पापी आखण नाह । कर-कर करणा लिख लै जाहु । आपे बीज आपे ही खाहु ।

तीरथ नावण जाउ - तीरथ नाम है । तीरथ सबद बीचार - अंतर गिआन है । गुर गिआन साचा थान तीरथ - दस पुरब सदा दसाहरा । हउ नाम हरि का सदा जाचउ - देहु प्रभ धरणीधरा ।

"नहाना धोना"

1. कोट तीरथ मजन इसनाना - इस कल मह मैल भरीजै ।
साधसंग जो हरि गुण गावै - सो निरमल कर लीजै ।

अर्थः- हे भाई ! (करोड़ों) तीर्थों पर स्नान करते हुए जीव जगत में विकारों के मैल से मलिन हो जाते हैं; लेकिन जो मनुष्य गुरु की संगति में रहकर परमात्मा की गुण स्तुति के गीत गाता है, वह सदाचारी बन जाता है ।

करम धरम पाखंड जो दीसह - तिन जम जागाती लूटै ।
निरबाण कीरतन गावह करते का - निमख सिमरत जित छूटै।

अर्थः- हे भाई ! (तीर्थ स्नान आदि) धार्मिक कार्य दिखावे के लिए हैं; ये काम जितने भी लोग करते दिखते हैं, उन्हें चुंगी वसूल करने वाला यमराज लूट लेता है । (इसलिए) वासना-रहित होकर कर्तार की गुण स्तुति किया करो, क्योंकि इसके प्रभाव में क्षण मात्र के लिए भी नाम-स्मरण करता हुआ मनुष्य विकारों से मुक्ति पा लेता है ।

संतह सागर पार उतरीऐ । जे को बचन कमावै संतन का - सो गुर परसादी तरीऐ ।

अर्थः- हे सन्तो ! प्रभु की गुण स्तुति द्वारा संसार-समुद्र से पार उतरा जा सकता है । यदि कोई मनुष्य सन्तो की शिक्षा का अनुसरण करें, तो वह गुरु की कृपा से पार उतर जाता है ।

बेद कतेब सिम्रित सभ सासत - इन्ह पड़िआ मुकत न होई ।
एक अखर जो गुरमुख जापै - तिस की निरमल सोई ।

अर्थः- वेद, पुराण, स्मृतियाँ इन सब पढ़ने से ही विकारों से छुटकारा नहीं मिलता, लेकिन जो मनुष्य गुरु की शरणागत होकर एक अविनाशी प्रभु का नाम जपता है उसकी शोभा बन जाती है ।

खत्री ब्राहमण सूद वैस - उपदेस चहु वरना कउ साझा ।
गुरमुख नाम जपै उधरै सो - कल मह घट-घट नानक माझा ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 747)

अर्थः- नाम-स्मरण का उपदेश ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र-चारों वर्णों के लोगों के लिए एक जैसा है । जो मनुष्य गुरु द्वारा बतलाए मार्ग पर चलकर प्रभु का नाम-स्मरण करता है, वह जगत में विकारों से बच निकलता है । हे नानक ! उस मनुष्य को परमात्मा प्रत्येक शरीर में अवस्थित दीख पड़ता है ।

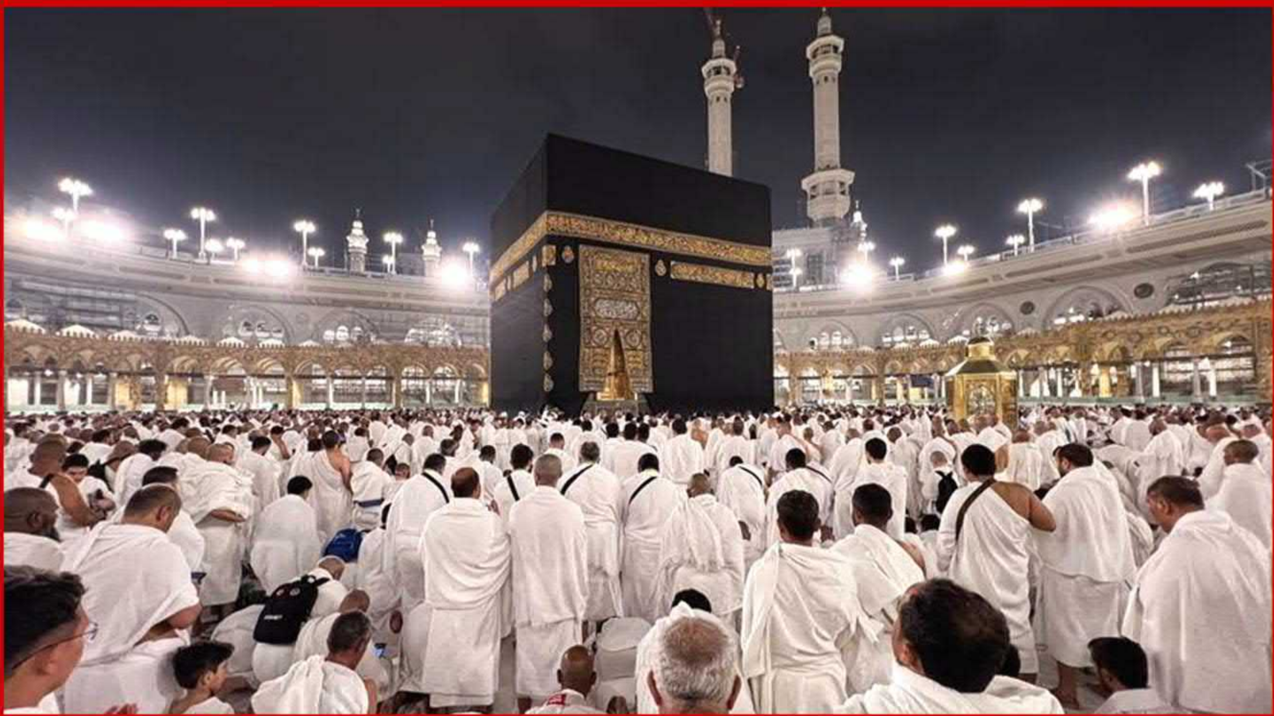

2. अंतर मैल जे तीरथ नावै - तिस बैकुंठ न जाना । लोक पतीणे - कछू न होवै - नाही राम अयाना ।

अर्थः- (जिस जीव के) मन में मलिनता हो और वह तीर्थ-स्नान करने चले; वह वैकुण्ठ नहीं पा सकता । लोगों की आँखों में धूल झोंकने से कुछ नहीं बनता, न ही परमात्मा नादान है (जो सच्चाई को न समझता हो) ।

पूजहु राम एक ही देवा । साचा नावण गुर की सेवा ।

अर्थः- (अतः, ऐ जीवों !) केवल परमपुरुष राम को ही एक मात्र देव मानकर उसकी शरण ग्रहण करो (पूजा करो), उसी की सेवा ही सच्चा तीर्थ-स्नान है ।

जल कै मजन जे गत होवै - नित-नित मेंडुक नावह । जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर - फिर-फिर जोनी आवह ।

अर्थः- यदि जल के स्नान से जीव को मोक्ष मिल सकता होता, तो मेंढक तो सदा नहाता ही रहता है (अर्थात् पानी में रहता है) । (भाव यह कि मेंढक को मोक्ष तो अब तक हो गया होता), किन्तु मेंढक हो या (तीर्थ-स्नानी) मनुष्य, दोनों को बार-बार जन्म लेना ही पड़ता है ।

मनह कठोर मरै बानारस - नरक न बाचिआ जाई । हरि का संत मरै हाड़म्बै - त सगली सैन तराई ।

अर्थः- कठोर मन वाला व्यक्ति (पापी) चाहे बनारस में जाकर मरे, तो भी वह नरक से बच नहीं सकता, जबकि हरि-भक्त चाहे मगहर में शरीर त्यागे, वह अपने साथ-साथ सेवकों का भी कल्याण करता है (बनारस में मरने से स्वर्ग तथा मगहर में मरने से गर्दभ योनि मिलती है -ऐसी मान्यता है) ।

दिनस न रैन - बेद नही सासत्र - तहा बसै निरंकारा । कह कबीर नर तिसह धिआवह - बावरिआ संसारा । (श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 484)

अर्थः- जहाँ रात-दिन का कोई भेद नहीं, वेद-शास्त्र का ज्ञान अपेक्षित नहीं, सच्चा परमात्मा वहीं बसता है । इसीलिए कबीरजी कहते हैं कि (ऐ जीवो !) संसार की मूर्खताओं से हटकर उसी परमात्मा का भजन करो ।

3. भरीऐ हथ पैर तन देह । पाणी धोतै उतरस खेह। मूत पलीती कपड़ होइ । दे साबूण लईऐ ओहु धोइ ।

अर्थः- यदि मनुष्य के हाथ-पैर और शरीर में धूल की मलिनता होती है, तो उसके निवारण के लिए शरीर को पानी से धो लेना उचित है । अर्थात् शरीर पर की धूल पानी से धुल जाती है । यदि कपड़ा मूतादि के स्पर्श से मलिन हो जाये, तो उसे साबुन लगाकर धोया जा सकता है; अर्थात् मलिन कपड़े को साफ़ करने का साधन साबुन है ।

भरीऐ मत पापा कै संग । ओह धोपै नावै कै रंग । पुंनी पापी आखण नाह । कर-कर करणा लिख लै जाह ।

अर्थः- किन्तु यदि बुद्धि या विवेक पापों के कारण मलिन हो, तो उसके शुद्धिकरण का एक- मात्र उपाय नाम का प्रेमपूर्वक जाप (रंग) ही है । तात्पर्य यह कि बुद्धि की मलिनता नाम से ही धुल सकती है-

(सांसारिक पानी और साबुन आदि यहाँ व्यर्थ हैं) । पुण्यात्मा एवं पापात्मा केवल तथाकथित ही नहीं हैं । जो कुछ प्राणी अपने हाथों (स्वय) करता है, उसका समूचा हिसाब-किताब धर्मराज लिख लेता है ।

आपे बीज आपे ही खाह । नानक हुकमी आवह जाह । (4)

अर्थः- तात्पर्य यह कि प्राणी के पाप और पुण्य उसके अपने ही उद्यम का फल हैं । इसलिए अपना बीजा हुआ कर्मफल आप ही (खाना) भोगना पड़ता है । गुरुजी कहते हैं कि संसार में जीव का आवागमन उस अकालपुरुष की आज्ञा से ही होता है । (परमात्मा की इस आज्ञा का मूलाधार जीव के अच्छे- बुरे कर्म होते हैं) ।

a. तीरथ नावा जे तिस भावा – विण भाणे कि नाइ करी ।
जेती सिरठ उपाई वेखा – विण करमा कि मिलै लई । (2)

अर्थः- (लोग तीर्थादि नहाने की बात करते हैं, गुरु जी कहते हैं) परमेश्वर को स्वीकार हो, तभी तीर्थ-स्नानादि सम्भव है; और यदि स्वीकृति के बिना तीर्थ कर भी लें तो उसका क्या लाभ होगा ? (तीर्थ-स्नान का आयोजन परमात्मा की प्रसन्नता के लिए ही तो करते हैं, उसे मंजूर न हुआ, तो क्या लाभ?) यह जो सृष्टि है इसमें बिना कर्मों के किसी को कभी कोई फल प्राप्त हुआ है ? जीव क्या अपनी शक्ति से कुछ पा सकता है ? तात्पर्य यह कि जो भी हमारे कर्मों में होगा, वह अवश्य मिलेगा- इसलिए तीर्थादि कर्मकाण्ड से क्या प्रयोजन !

८. गुर समान तीरथ नही कोइ । सर संतोख तास गुर होइ ।
तीरथ हमरा हरि को नाम । गुर उपदेसिआ तत गिआन ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 1328/1142)

अर्थः- गुरु के समान कोई तीर्थ नहीं, वह गुरु सन्तोष का सरोवर है । हमारा पुण्य तीर्थ परमात्मा का नाम ही है, गुरु के उपदेश का यही तत्त्व-ज्ञान है ।

८. सचा तीरथ जित सत सर नावण - गुरमुख आप बुझाए ।
अठसठ तीरथ गुर सबद दिखाए - तित नातै मल जाए ।

(श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी - 753)

अर्थः- जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, उसे प्रभु परमात्मा स्वयं सच्चे तीर्थ, गुरु के शब्द रूपी सरोवर में स्नान करने की सूझ देता है । गुरु के शब्द द्वारा ही उसे (प्रभु) अड़सठ तीर्थ का पुण्य लब्ध होता है । उस (गुरु-शब्द) तीर्थ में स्नान करने से विकारों का मैल उतर जाता है । (वास्तव में) गुरु का शब्द ही सत्य स्वरूप और पवित्र तीर्थ है, (उस तीर्थ में स्नान करने से) मैल नहीं लगता । उसमें स्नान करने वाला मनुष्य गुरु से सत्य स्वरूप परमात्मा की सही पहचान प्राप्त कर लेता है ।

८. तीरथ नावण जाउ – तीरथ नामु है । तीरथ सबद बीचार – अंतर गिआन है ।

अर्थः- मैं तीर्थ पर स्नान करने जाऊँ, लेकिन मेरे लिए प्रभु का नाम ही तीर्थ है । गुरु के शब्द को मन-मस्तिष्क में दृढ़ाना ही मेरे लिए तीर्थ है, जिससे मेरा भीतर प्रभु के साथ ऐक्य हो जाता है ।

गुर गिआन साचा थान तीरथ – दस पुरब सदा दसाहरा । हउ नाम हरि का सदा जाचउ – देहु प्रभ धरणीधरा ।

अर्थः- सतिगुरु का दिया हुआ ज्ञान मेरे लिए सच्चा तीर्थ स्नान है, मेरे लिए दस पवित्र दिन(दस स्नान पर्व-अष्टमी, चौदश, अमावस, संक्रान्ति, पूर्णिमा, उत्तरायण, दक्षिणायन, व्यतिपात, चन्द्र ग्रहण, सूर्यग्रहण ।) हैं, मेरे लिए यही दस पापों की हरने वाली गंगा का जन्मदिन (दसाहरा

= ज्येष्ठ सुदी दशमीः दसों पापों का हरण करने वाली गंगा का जन्म-दिवस।) है । मैं तो हमेशा प्रभु का नाम ही माँगता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि हे पृथ्वी के सम्बल स्वामी ! मुझे अपना नाम दो ।

संसार रोगी नाम दारू - मैल लागै सच बिना । गुर वाक निरमल सदा चानण - नित साच तीरथ मजना । (687)

अर्थः- जगत विकार ग्रस्त है, परमात्मा का नाम इन रोगों का एक मात्र उपचार है । सत्य स्वरूप प्रभु के नाम के बिना मन को विकारों का मैल लग जाता है । गुरु का पवित्र शब्द मनुष्य को सदा आत्मिक प्रकाश देता है, यही नित्य सत्य स्वरूप तीर्थ है, यही तीर्थ- स्नान है ।

(पाठी माँ साहिबा)

हक हक हक

(शब्द गुरु प्रत्यक्षता)

Main Teachings and Important Points -

In human cultures across the globe, the act of bathing (Nahana Dhona) has historically been associated with purification, transition, and holiness. However, a profound dichotomy exists between physical cleanliness and spiritual purity. In the regular routine of life, humans place immense faith in external rituals—visiting sacred rivers, scrubbing the physical body, and adopting specific attires—believing these actions can erase the blemishes of misdeeds.

Guru Sahib preaches that literal bathing at holy sites ("नहाना धोना") cannot purify the soul. Physical ablutions and pilgrimages merely clean the body, but leave the mind and ego unwashed. Instead, true cleansing comes from Naam/shabad and living the Guru's teachings. As Guru sahib writes, "अंतरि तीरथु ज्ञानु है सतिगुरि दीआ बुझाइ" - in other words, the real pilgrimage (तीर्थ) is the inner wisdom given by the True Guru, which washes away

the mind's impurity. Unlike worldly rituals, this inward "bath" in God's Name purifies even when the soul remains at home.

The core philosophy of Gurbani is fiercely egalitarian. During an era heavily fractured by the rigid caste systems, where spiritual knowledge was guarded as the exclusive monopoly of the privileged upper classes, the Sikh Gurus opened the gates of spiritual liberation to all of humanity. The Gurus emphasized that this teaching applies to all people. Every person is equally invited to walk the Naam path. As the Granth states, remembering the One God is not limited by status or scriptures:

"दिनसु न रैनि - वेद नहीं शास्त्र - तहाँ बसै निरंकारा । कहि कबीर नर तिसहि धिआवह बावरिआ संसारा". Guru sahib states even a lowly mind (जान बूझकर शास्त्रों में उलझा) to leave the blind rituals - God abides " beyond day or night, beyond Vedas or scriptures." Likewise, the call of Naam is the same for Kshatriya, Brahmin, Vaishya or Shudra. Gentle souls of any background can sit in the Sant Sangat (holy congregation) and be ferried across life's ocean. It

is we who started these mindless traditions and ceremonies and religions etc. The gurus preached the message of God and showed us the way but instead of walking in their given path we created our own rituals.

For centuries, millions have flocked to holy rivers and ancient pilgrimage sites (Tiraths) in search of absolution. Gurbani, however, reveals a stark truth: in the age of Kalyug (the spiritual dark age), mechanical bathing at these destinations only inflates the ego, adding a layer of spiritual pride over existing vices. As per Guru sahib, the true tirath (pilgrimage) is internal, not external. "तीरथ नावण जाउ – तीरथु नामु है । तीर्थु शब्दु बिचारु – अंतरि ज्ञानु है", which means "If I go to bathe at pilgrimage sites, my pilgrimage is the naam/shabd of God." In other words, internally bathing in naam/shabd is the real "bath." The Gurbani even declares the world a patient and Naam the medicine ("The world is diseased; Naam is the only medicine – without the True Name, filth remains."). Thus, Naam (the Shabad) is the immaterial "water" that washes our soul.

The Gurbani illustrates that external efforts cannot substitute this. Guru sahib observes that if bathing granted liberation, frogs (मेंड़क) who live in water would be liberated. Yet both frogs and ritual bathers are reborn again. In clear terms the scripture warns: physical cleansing does not remove karma. As Guru sahib states, "जेते रे तीरथ नाए अह्मबुध मैल लाए - घर को ठाकुर इक तिल न माने ". Even bathing at countless pilgrimages only coats the mind with ego ("अहंकार की मैल") and does not please the Lord a whit. In contrast, one who finds the True Guru and meditates on the Lord's Name becomes truly holy in every place.

Instead of outward show, the Guru sahib urges for self-introspection and inner devotion. The concept of the "tenth gate" is used in Sikh thought: though the body has nine portals (senses), the tenth gate (the guru's eye or ajna chakra) is the soul's doorway to God. The Guru's word (Bani) opens that gate. Gurbani says "अंतरि तीरथु ग्नानु है सतिगुरि दीआ बुझाइ" - within each

person lies a shrine of wisdom revealed by the Guru. When one bathes in this amrit (nectar) of Naam, the mind's stains vanish. Indeed, "मनु निरमलु होआ अमृत सरि तीर्थि नाइ" – the mind becomes pure, bathing in the ambrosial pool of God's Name. The "true Gurdwara" or sanctuary is thus in the heart: "घर ही परचा पाइआ जोति जोति मिलाइ". The Light of divine Truth shines within the soul, not in any marble shrine. When the Shabad inspires us, we meet the beloved (God) in that inner temple.

Focus on clothing, rituals or outward decency is useless without this inner connection. As one Shabad observes, people who obsess over ashramas and external rites "मनूआ नह पतीने – बिबेकहीन देही धोए": they only wash the body of the foolish (बिबेकहीन) man but leave his confused mind dirty. All the four ashramas and their austerities cannot save the soul if discrimination and greed remain. In contrast, a Naam-Gyan (one

coloured by the Word) finds true uplift, regardless of ceremonies.

Worldly rituals and ceremonies create a false sense of pride and accomplishment, no matter how great the austerity and perseverance of a particular soul is. This illusion can create a grievous downfall of the soul, all it takes is one small push. Even great sages are warned not to fall for maya (illusion). The futility of trying to achieve spiritual purity through physical environments or severe bodily disciplines is perfectly illustrated by the ancient Puranic story of Saubhari (Sourabh) Rishi, a narrative frequently invoked in spiritual discourses to expose the deceptive nature of the mind. Saubhari Rishi was an ascetic who possessed immense yogic powers. Seeking complete isolation from the worldly distractions of the earth, he submerged himself deep into the waters of the Yamuna River to perform rigorous penance for years. He believed that by confining his physical body underwater, he could completely bypass earthly temptations. However, one day while meditating beneath the waves, he observed a fish playfully interacting with its many wives and offspring. Despite his decades of physical austerity, his mind had not been cleansed internally by the true Shabad or divine surrender. The sight of the fish instantly kindled a dormant, volcanic wave of sensory desire within his heart. Driven by this sudden lust for family life, Saubhari emerged from the river, abandoned his ascetics, and went to the court of King Mandhata, demanding the hands of his daughters. The King held a swayamvara, but Saubhari by yogic power became a handsome prince and the king's fifty princesses married him.

Saubhari returned home, built palaces and created new divine worlds for each member of his family according to their whims and fancies, and lived as their husband, fathering five thousand sons. Yet amid the luxury he became disillusioned: he had "tasted absolute joy" in solitude but now realized his desires were endless and false. In his mind he cursed himself: after all his 50 wives and 5000 sons, "is there any end to my material desires for enjoyment, in this life and the next?". He left them to resume austerities, realizing that chasing sensual pleasure (even righteous duty) had taken him far from God. This story (from Bhagavata Purana) shows that ritual family life or worldly successes do not confer liberation – only singleness of mind on God does. The story of Saubhari Rishi stands as a monumental warning: you can live underwater like a fish or a frog, but if your internal mind is not anchored in the divine connection of Naam, the latent filth of desire will eventually pull you down. Outer environment and physical constraints are a complete deception.

Guru sahib repeatedly teaches that Naam-bhajan and Gurmat (Guru's wisdom) are the only true cleansing. If external rivers cannot cleanse the soul, where does the real pilgrimage

lie? Gurbani shifts the entire focus inward. The human body itself is the ultimate temple, the true Gurdwara, and the ultimate pilgrimage site. Within this physical frame lies the Dasam Duar (the Tenth Door), the spiritual gateway where the eternal nectar (Amrit), the True Shabad, and the Creator reside. The true holy bath is the immersion of the consciousness into the ocean of spiritual wisdom. Reflecting on the Guru's Shabad and awakening inner divine knowledge (Gyan) is the true pilgrimage that washes away the mental grime accumulated over lifetimes. The Guru sahib scorn showy rituals as **पाखण्ड** (hypocrisy) and instead celebrate "**मानस तीर्थ**" - the Nam-simran in the mind.

In sum, Guru sahib teaches that external baths and pilgrimages cannot wash away the filth of ego and attachment. The Guru's Shabad Naam is the only true water that cleanses the heart. True bathing is not an act of the body; it is an act of the consciousness. It requires an individual to step away from

external hypocrisies, journey deep into the temple of their own body, and submerge their mind into the cleansing waters of the Shabad. Only when the divine words of Baani are implemented practically into one's daily character, does the mind become truly spotless, liberating the soul from the wheel of birth and death forever. As the Gurbani states: "तीरथ नावण जाउ – तीरथु नामु है" and "संसार रोगी नाम दारू – मैल लागै सच बिना । गुर वाक निरमल सदा चानण – नित साच तीरथ मजना ।". The soul must dip within, in the Guru's Word, through the tenth gate – only then does it break the cycle of rebirth. Gurus welcome everyone on this inward pilgrimage: they promise that whoever fixes the mind on God's Name becomes rid of impurity. Thus, instead of washing the body, one should wash the soul by meditating on the Naam. This is the message for all humanity, eternal and universal.

ऐक शब्द

उपरोक्त अर्थों में कहे गये गुरू-सतगुरू-शबद-नाम-सच्चा नाम इत्यादि विशेष - विशेषो का केवल और केवल ऐक ही अर्थ विशेष है कि – "रागमई प्रकाशित सुगंधित आवाज़ विशेष" । इसके आलावा सारे अर्थ केवल मनमत हैं – गुरूमत का इससे कोई संबंध विशेष नही हैं ।

"सबद गुरू - सुरत धुन चेला । गुण गोबिंद - नाम धुन बाणी ।"

ऐक शब्द

साध संगत जी, यदि कुछ भी जरा सा भी कम रह गया अथवा बड़ गया है तो हम दोनों हाथ जोड़कर नतमतसक आपसे क्षमा प्रार्थी हैं । अतः कृपया क्षमा प्रदान करें और बख़्शने की भी कृपालता करें – धन्यवाद ।

सृष्टि में सदा ही कोई एक विरला – दुर्लभ – मर्यादित – महाजीव विशेष विद्यमान होता ही है, अतः हम उस महा प्राणी को दोनों हाथ जोड़ नतमतसक सदा ही नमस्कार करते हैं ।

" No help is coming dear ! – so, you better start "

NOW – Help Yourself ?